कश्मीरी पंडित और महाशिवरात्रि: क्या वो सुनहरे दिन लौटेंगे ?

लाखों कश्मीरी पंडित परिवारों ने देश के अलग-अलग हिस्सों में महाशिवरात्रि मनाई है। . महाशिवरात्रि या शिवरात्रि, जिसे कश्मीरी परंपरा में हेरथ कहा जाता है, कश्मीरियों का सबसे बड़ा त्योहार है. फाल्गुन महीने के कृष्णपक्ष की द्वादशी से शुरू होने वाला यह त्योहार कश्मीर में तीन से चार दिन तक मनाया जाता है. इसकी तैयारियां फाल्गुन लगते ही शुरू हो जाती हैं. घर का कोना-कोना पूरी तरह साफ किया जाता है. ठाकुर कुठ यानी घर में भगवान के लिए निर्धारित कमरे को सजाया जाता है. अखरोट मंगा कर पानी में रख दिए जाते हैं. नए कपड़े बनवाए जाते हैं.

कश्मीरी पंडित मानते हैं कि शिवरात्रि के समय बर्फ ज़रूर गिरती है. वे उसे ईश्वर के आशीर्वाद के रूप में देखते हैं. हालांकि दूसरे नज़रिए से देखें तो फाल्गुन में बर्फ गिरना कश्मीर में होने वाली सेब और धान की फसलों के लिए भी ज़रूरी है. इसलिए भी वे सदियों से बर्फ को ईश्वर के आशीर्वाद के रूप में देखा करते थे. पर घाटी से उनके निर्वासन के बाद, जब वहां के बागों और खलिहानों से उनका रिश्ता लगभग टूट सा गया है, शिवरात्रि पर गिरने वाली बर्फ की खबर अब उनके मन में टीस भर देती है.

यादों की इस टीस को जम्मू में रह रही एक बुज़ुर्ग कश्मीरी महिला की यकीन भरी उम्मीद में महसूस किया जा सकता है. दिल्ली में रहने वाली अपनी पोती के फोन पर यह बताने पर कि कश्मीर में बर्फ गिर रही है, वे कहती हैं, 'हम चाहे कश्मीर को भूल जाएं, पर मौज़ कशीर (मां-कश्मीर) हमें कभी नहीं भूलेगी.'

शिवरात्रि के समय गिरने वाली बर्फ को लेकर कश्मीर में एक कहानी भी खूब सुनाई जाती है. बात 1752 से 1819 ईस्वी के कहीं बीच की है. उन दिनों की जब कश्मीर में अफगानों का शासन था. अफगानों के गवर्नर जब्बार खान ने ऐलान किया कि पंडित अब फाल्गुन में शिवरात्रि मनाने की जगह गर्मियों में यह त्योहार मनाएंगे, तब देखेंगे कि बर्फ गिरती है कि नहीं. अफगानों की हैवानियत का खौफ था कि पंडितों को उस साल गर्मियों में शिव की पूजा करनी पड़ी. लेकिन कहते हैं कि आस्था खौफ से बड़ी चीज़ होती है. किस्सा है कि उस साल जुलाई में बर्फ पड़ी और स्थानीय मुसलमान इससे इतने प्रभावित हुए कि शिवरात्रि के अगले दिन वे पंडितों के घर सलाम करने पहुंचे. तब से आज तक शिवरात्रि के अगले दिन को सलाम ही कहा जाता है. इस दिन लोग अपने पड़ोसियों और रिश्तेदारों के यहां जाते हैं, मिलते हैं, बच्चों को पैसे देते हैं.

‘लेकिन ये सब अब कहां बचा है ? जब से घाटी छूटी है, सब वहीं छूट गया,’ जम्मू में रहने वाले अवतार कृष्ण भट कश्मीर की याद आते ही उदास हो जाते हैं. ‘सारे पंडित जाने कितने राज्यों, कितने देशों में बिखर गए हैं. हमारी कश्मीरियत बची ही कहां है. यहां एक कमरे के घर में कहां तो ठाकुर कुठ बनाएं और कहां मिलने आने वालों को बैठाएं. क्या करेंगे ?’ खास कश्मीरी लहज़े में हिंदी बोलते हुए वे बताते हैं.

श्रीनगर के रैनावारी से आकर जम्मू में रहने लगी सागरिका किस्सू बताती हैं, ‘कश्मीर में त्योहार की तैयारियां अलग तरह से की जाती थीं. सारे बर्तन मिट्टी से साफ किए जाते थे. शुद्धता और पवित्रता का पूरा ध्यान रखा जाता था. बच्चे ज़रा भी इधर-उधर की चीज़ छू दें तो मिट्टी से उनके हाथ धुला दिए जाते थे. जम्मू में मेरी दादी अब भी मिट्टी से हाथ धोती हैं, और हमारे हाथ भी धुलाती हैं, पर पापा नाराज़ होते हैं. कहते हैं कि ये कश्मीर की मिट्टी नहीं है जो इससे धोकर हाथ शुद्ध हो जाएंगे. बाकी बातें छोड़ भी दें, यहां मिट्टी बदलने से ही कितना कुछ बदल गया है.’

कश्मीरी शैव परंपरा में शिव आदि देव हैं. पंडित परिवारों के लिए शिव उनके जामाता यानी जंवाई हैं. और हर पंडित लड़की शिव की ब्याहता. कश्मीरी पंडित विवाहों में भी वर और वधू को शिव और शक्ति मान कर उनकी पूजा की जाती है. इसी तरह शिवरात्रि के दौरान भी शिव की पूजा और उनका सत्कार एक जामाता के तौर पर किया जाता है. फाल्गुन महीने की दशमी को जिसे कश्मीर में द्यारा दहम कहा जाता है, घर की बहू अपने मायके जाती है. वहां अपने बाल धोती है और फिर शगुन में कांगड़ी, नमक, कश्मीरी रोटियां आदि लेकर वापस ससुराल आती है. द्वादशी के दिन को ‘वागुर’ कहा जाता है. इस दिन वे मिट्टी के घड़ों को शिव और पार्वती मानकर उनमें वितस्ता (झेलम) का पानी भरते हैं. कश्मीर में यारबल या पनघट जाकर किसी भी बहती नदी से पानी भर लिया जाता था. लेकिन जम्मू, दिल्ली या बाकी इलाकों में रहने वाले कश्मीरी पंडितों के पास अब यारबल जाकर बहता पानी भरने का विकल्प ही नहीं है. अब वे घर में नलके का पानी भरते हैं, और फिर घर के बाहर जाकर शिव के घड़े को फिर से ऐसे भीतर लाते हैं जैसे जामाता को लाया जाता है.

और उसके बाद शुरू होती है शिव की खातिरदारी. उन्हें ठाकुर कुठ में स्थापित किया जाता है. उनके लिए घास से बने आभूषण तैयार किए जाते हैं जिन्हें वुसिर कहते हैं. पर इन दिनों न तो घास आसानी से मिलती है और न ही वुसिर बनाना सबको आता है. ‘ज़्यादातर लोगों को अब पूजा करना भी नहीं आता. पहले सब साथ रहते थे. एक सम्मिलित परिवार एक जगह इकट्ठा होकर पूजा करता था. पर अब उतनी जगह ही नहीं, और सब दूर-दूर रहते हैं. पहले बड़े-बुज़ुर्गों के साथ देखते-देखते पूजा करना सीख लेते थे, सबको वुसिर बनाना भी आता था, पर अब ज़्यादातर लोग बाज़ार से वुसिर ले आते हैं,’ शिवरात्रि के लिए परिवार के पास जम्मू आए शैलेंद्र हांगलू बताते हैं. शैलेंद्र 27 साल के हैं और क्योंकि उनका जन्म 1989 के बाद के बाद हुआ उन्होंने कोई शिवरात्रि कश्मीर घाटी में नहीं मनाई. दिल्ली में अपने परिवार के साथ रह रहे संजय पंडिता भी इसी उम्र के हैं, पर वो खुद वुसिर बनाते हैं. दिल्ली में जम्मू की तरह यह सब सामान नहीं मिलता. हमारी उनसे मुलाकात तब हुई जब वे दिल्ली के बाज़ारों में फल वालों से घास खरीदने की कोशिश कर रहे थे, ताकि वुसिर बना सकें. देस छूटने के बाद परंपराओं को बचाए रखना आसान नहीं है.

जम्मू के एक कमरे के घर में अस्थाई ठाकुर कुठ बनाकर पूजा करता एक पंडित परिवार.

शिव और पार्वती के घड़ों के अलावा ग्यारह घड़े और भरे जाते हैं जो सभी कोणों और दिशाओं के सूचक होते हैं. हालांकि अब मिट्टी के घड़ों की जगह सोने-चांदी या स्टील के पात्रों का इस्तेमाल होने लगा है. शिवरात्रि की रात लगभग पूरी रात शिव और पार्वती की स्तुति की जाती है. घाटी में वागुर वाले दिन ही परिवारों के पंडित उनके घर आ जाया करते थे, वे शिवरात्रि खत्म होने तक यजमान के घर में ठहरते और पूजा करवाते. लेकिन अब ऐसा नहीं होता. 'घाटी छोड़ने के बाद सबसे बड़ी समस्या इस बात की है कि अब पंडित नहीं मिलते. परिवार क्योंकि टुकड़ों में बंट गए हैं तो हर घर को एक पंडित चाहिए, जबकि पंडित उतने रहे नहीं, उन्होंने दूसरे रोजगार अपना लिए हैं. इन दिनों लोग रिकॉर्डेड कैसेट्स और ऑडियोज़ की मदद से पूजा करते हैं. जंत्री और शिवरात्रि की किताबें पढ़कर काम चलाते हैं,' जम्मू में रहने वाले सतीश किस्सू बताते हैं.

सतीश बचपन के दिनों को याद करते हैं जब हेरथ के दिन सब बच्चे और कई बार उनके माता पिता मिलकर 'हार' खेला करते थे. हार सीपियों से खेला जाने वाला वह खेल था जो हर पंडित के घर में खेला जाता था. वे भावुक होते हुए बताते हैं, 'मैं वो सब याद करते हुए जैसे चालीस साल पीछे लौट गया हूं, जब हम अपने हार मोज़ों में छुपा कर तकिए के नीचे रखते थे. ताकि भाई-बहनों में से कोई ले न ले.'

लेकिन कुछ चीज़ें अब भी नहीं बदलीं. जैसे शिवरात्रि को लेकर कश्मीरी पंडितों का उत्साह. आज भी बच्चे चाहे कहीं भी पढ़ाई-नौकरी कर रहे हों, वे घर ज़रूर लौटते हैं. जैसे इन दिनों कश्मीर में नौकरी कर रहे शैलेंद्र, अपने वर्तमान घर जम्मू लौटे हैं. वे बताते हैं कि इस त्योहार का सबसे खास हिस्सा वह होता है जब आखिरी दिन जब वे जामाता शिव के साथ पार्वती को विदा करके आते हैं, यानी घड़े के जल का विसर्जन करके लौटते हैं. लौटने पर घर का मुखिया अपने कंधे पर घड़ा उठा कर घर का दरवाज़ा खटखटाता है. और अंदर से उसकी पत्नी और बच्चे पूछते हैं कि कौन. यहां एक खूबसूरत संवाद चलता है. ठुक-ठुक. कुस छुव ?(कौन है) राम ब्रोर. (राम की बिल्ली) क्या हेथ ? (क्या लाए ?) अन्न हेथ, धन हेथ, ओर ज़ू, दोरकुठ, विद्या, कारबार, ते धन-संपदा हेथ. (अन्न-धन, स्वस्थ जीवन, मजबूत घुटने, विद्या, कारोबार और धन संपदा लाए हैं.) फिर उसके बाद दरवाज़ा खुलता है और बाहर से आने वालों का स्वागत किया जाता.

शायद इसी तरह कश्मीरी पंडित उम्मीद करते हैं कि एक दिन वे सब फिर वापस घाटी के दरवाज़े पर पहुंच कर ठुक-ठुक करेंगे और मौज़-कशीर (मां कश्मीर) उसी तरह मुस्कुरा कर उनका स्वागत करेगी.

साभार – https://satyagrah.scroll.in/ से